International Journal of Educational Research and Development
www.allinnovationjournal.com
Online ISSN: 2664-7095, Print ISSN: 2664-7087
Received: 14-08-2025, Accepted: 13-09-2025, Published: 28-09-2025
Volume 7, Issue 3, 2025, Page No. 12-14

जत्रुऊर्ध्व रोगों के प्रबंधन में नेति क्रिया एवं नस्य कर्म की उपयोगिता

देवेश कुमार[1], डॉ. ऊधम सिंह[2]
[1] शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तर प्रदेश, भारत
[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार,उत्तर प्रदेश, भारत

सारश
वर्तमान समय में मनुष्य में नाक, कान, गला, वाणी, के रोग तथा बालों का असमय सफेद होना व झड़ना आदि रोग बहुत तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। ये सभी रोग कन्धे से ऊपर के अंगों में होते हैं इसलिए इन्हें जत्रुऊर्ध्व रोग कहा जाता है। चूंकि जत्रु का अर्थ है कंधा तथा ऊर्ध्व का अर्थ है ऊपर इसलिए इन्हें जत्रुऊर्ध्व, रोग कहा जाता है। इनके उपचार के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की औषधियों का सेवन किया जाता है जो कुछ समय के लिए तो आराम देती हैं किन्तु कुछ समय पश्चात और भी विकृत रूप में सामने आता है। जो यह स्पष्ट करता है कि यह समस्या का स्थायी समाधान न होकर अस्थायी समाधान है। उपरोक्त रोगों का स्थायी समाधान योग ऋषियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पूर्व में ही योग एवं आयुर्वेद ग्रन्थों में बताया है। योग में षट्कर्म में नेति क्रिया एवं आयुर्वेद के पंचकर्म में नस्य कर्म का वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु जानकारी के अभाव में समाज इन सस्ती, सुलभ, एवं स्थायी चिकित्सा प्रणालियों से दूर ही रहा। प्रस्तुत शोध–पत्र में उपरोक्त जत्रुऊर्ध्व रोगों के प्रबंधन में नेति क्रिया एवं नस्य कर्म की उपयोगिता को सुझाया गया है जो समाज को स्वास्थ्य लाभ प्रदान कराने में सहायक सिद्ध होगा।

मूल शब्दः जत्रुऊर्ध्व, पंचकर्म, षट्कर्म, योग, रोग

प्रस्तावना
जैसा की हम सभी जानते हैं कि वर्तमान समय में दिनचर्या एवं आहार के विकृत होने के कारण मनुष्य में विभिन्न प्रकार के रोग हो रहे हैं जो रोग शरीर के जिस अंग में होते हैं उन्हें वही नाम दे दिया जाता है जैसे उदर में होने वाले रोगों को उदरीय रोग कह दिया जाता है इसी प्रकार कंधे से ऊपर के रोगों को जत्रुऊर्ध्व रोग कहा जाता है जिनके उपचार हेतु विभिन्न तरह की चिकित्सा पद्धतियों को अपनाया जा रहा है। वर्तमान में भिन्न–भिन्न प्रकार की चिकित्सा प्रणालियाँ हैं किन्तु इन रोगों का स्थायी समाधान नहीं हो रहा है। जत्रुऊर्ध्व रोगों के अधिक बढ़ जाने से मानसिक रोग उत्पन्न होने लगते हैं, मनुष्य मानसिक रोगी होने लगता है। इसलिए इन जत्रुऊर्ध्व रोगों का उपचार अत्यधिक आवश्यक हो जाता है। जत्रुऊर्ध्व रोगों के प्रबंधन हेतु योगिक षट्कर्मों में नेति क्रिया एवं आयुर्वेदिक पंचकर्म के अन्तर्गत नस्य कर्म का विधान है। उपरोक्त कर्मों को ग्रन्थों में शरीर शुद्धि क्रिया के रूप में बताया है, जो शरीर में होने वाले विजातीय तत्वों एवं विषरूपी तत्वों को बाहर निकालने का कार्य करते हैं। प्राचीन काल में ऋषि–मुनि अपने शरीर की शुद्धि एवं चिकित्सा स्वयं इनके माध्यम से करते थे। जत्रुऊर्ध्व रोगों का सफल उपचार किया जाना संभव है। आधुनिक शोधकर्ताओं ने अपनी शोध में ये स्पष्ट कर दिया है कि उपरोक्त शोधन क्रियाएँ जत्रुऊर्ध्व रोगों का सफल उपचार करने में सक्षम हैं। ऋषि मुनियों का यह ज्ञान केवल पुस्तकों तक ही सीमित रहा जिसके कारण समाज को वो लाभ नहीं मिल पाया जिसकी अपेक्षा की जाती है। समाज को स्वास्थ्य का लाभ प्रदान करने और उपरोक्त रोगों की चिकित्सा हेतु हमें इन चिकित्सा पद्धत्तियों को जन सामान्य तक पहुँचाना आवश्यक है।

जत्रुऊर्ध्व शब्द का अर्थ – जत्रु अर्थात् कंधा, तथा ऊर्ध्व का अर्थ होता है ऊपर, इसलिए जत्रुऊर्ध्व शब्द का सही अर्थ हुआ कंधे से ऊपर का स्थान जिसमें चेहरा, मुख, मस्तिष्क, आँख, नाक, कान, गला, सिर आदि शामिल हैं, इसलिए इन्हें जत्रुऊर्ध्व अंग कहा जाता है तथा इन अंगों में होने वाले रोगों को जत्रुऊर्ध्व रोग कहा जाता है।

जत्रुऊर्ध्व रोग – आँख, नाक, कान के रोग (ENT), आँख के रोग जैसे– दूर दृष्टि दोष, निकट दृष्टि दोष, पुतली पर मांस की परत जमना, मोतिया बिंद, रतौंधी एवं अन्य, नाक के रोगों में राइनाइटिस, साईनोसाइटिस, कान के रोगों में कान बहना, कान का शुष्क होना, चेहरे पर झुर्रियां पड़ना, बाल सफेद होना व झड़ना, माइग्रेन (सिर के आधे हिस्से में दर्द होना), हकलाना, तुतलाना, दाँत में दर्द, मोटी आवाज होना, बारीक आवाज होना, नींद न आना, शरीर में आलस्य बना रहना, मुख से बदबू आना, तनाव, चिंता, तंत्रिकीय रोग, निद्रा रोग, मन में चंचलता, कंधे व गर्दन में जकड़न रहना आदि रोग शामिल हैं।

जत्रुऊर्ध्व रोगों का प्रबंधन – जैसा कि ऊपर बताया गया है कि जत्रुऊर्ध्व रोगों के उपचार हेतु योग एवं आयुर्वेद ग्रन्थों में क्रमशः षट्कर्म तथा पंचकर्म का विधान है। जिसके माध्यम से जत्रुऊर्ध्वगत रोगों के प्रबंधन में उचित लाभ प्राप्त होता है। षट्कर्म में नेति क्रिया का वर्णन मिलता है जिसे जल नेति एवं सूत्र नेति में विभाजित किया गया है। पंचकर्म में नस्य का वर्णन मिलता है जिसके अनेक प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है। जत्रुऊर्ध्व रोगों का मुख्य स्थान सिर है और सिर में औषधि नस्य के माध्यम से ही दी जा सकती है इसलिए नेति और नस्य जत्रुऊर्ध्व रोगों को ठीक करने में सहायक हैं।

षट्कर्म – षट्कर्म शोधन कर्म हैं जिनसे शरीर का शोधन किया जाता है। महर्षि घेरण्ड ने स्पष्ट कहा है कि षट्कर्मणा शोधनम् च[1] अर्थात् षट्कर्म से शरीर की शुद्धि होती है। इसी प्रकार स्वामी स्वात्माराम जी ने भी षट्कर्म का उद्देश्य बताया है कि –

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्व षट्कर्माणि समाचरेत
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां संभावतः।।[2]

अर्थात् मोटे शरीर वाले, स्थूलकाय व्यक्ति तथा जिनका कफ अधिक बढ़ा हुआ है ऐसे लोगों को षट्कर्म करना चाहिए एवं जिन व्यक्तियों में पित्त, वात, तथा कफ की समानता हो उन्हें षट्कर्म करने की अधिक आवश्यकता नहीं है। इससे स्पष्ट होता

है की षट्कर्म शरीर की शुद्धि करके पित्त, वात, तथा कफ त्रिदोषों में समानता लाता है और रोगों से मुक्त करता है। घेरण्ड संहिता में षट्कर्मों का निम्न क्रम मिलता है –

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि समाचरेत।।[3]

अर्थात् धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक तथा कपालभाति। ये छः क्रियाएँ षट्कर्म कहलाती हैं। ये क्रियाएँ शरीर की शुद्धि करती है तथा शरीर में उत्पन्न विजातीय तत्वों को बाहर करती है, जिससे व्यक्ति के शरीर का शोधन होता है और व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। योग के विद्वानों ने षट्कर्म के विषय में भिन्न– भिन्न बाते बताई हैं।
हठप्रदीपिका में षट्कर्मों का क्रम निम्न प्रकार दिया गया है –

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा ।
कपालभातिश्चौतानि षट्कर्माणि प्रचक्षत।।[4]

अर्थात् धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, तथा कपालभाति।
हठरत्नावली में षट्कर्म के अन्तर्गत अष्टकर्म बताए गए हैं अर्थात् आठ कर्मों का वर्णन किया गया है –

चक्रि नौलिर्धौतिनेतिबस्तिश्च गजकरणी।
त्राटकं मस्तकभ्रांतिः कर्माण्यष्टौ प्रचक्षत।।[5]

अर्थात् चक्री, नौलि, धौति, नेति, बस्ति, गजकरणी, त्राटक तथा मस्तकभ्रांति आदि आठ कर्म बताए गए हैं। इन आठ कर्मों के माध्यम से शरीर की शुद्धि तथा पित्त, वात, कफ को संतुलन में लाया जाता है।
स्वामी चरणदास जी ने भक्तिसागर के अष्टांग योग में षट्कर्मों का वर्णन किया है। वे कहते हैं –

नेति धोती बसती करिये। कुंजर करम रोग सब हरिये।
न्योली किये भजै तन बाधा। देखि देखि जिन गुरु सों साधा।
त्राटक कर्म दृष्टि ठहरावें। पलक पलक सों लगन न पावै।।[6]

स्वामी चरणदास जी शोधन क्रियाओं का क्रम बताते हैं नेती, धौति, व बस्ति, कुंजल, नौली, तथा त्राटक। वे कहते हैं कि इनके अभ्यास से सभी रोग ठीक होते हैं, इसलिए इनका गुरु के समक्ष ही अभ्यास करना चाहिए। आगे कहते हैं –

पहिले ये सब साधिए, काया होवे शुद्धि।
रोग न लागे देह को, निर्मल होवे बुद्धि।।[7]

अर्थात् पहले इन षट्कर्मों से शरीर की शुद्धि करके शरीर को साध लीजिये। इनके अभ्यास से शरीर में किसी भी प्रकार का रोग उत्पन्न नहीं होता। बुद्धि भी तीव्र और शुद्ध हो जाती है।

नेति के प्रकार एवं विधि – योग ग्रन्थों में नेति क्रिया के तीन प्रकार बताए गए हैं, रबर नेति, सूत्र नेति, तथा जल नेति। जल नेति में एक नेति पॉट की सहायता से गुन–गुने पानी में नमक मिलाकर नासिका मार्ग से जल अथवा औषधियों को प्रवेश कराया जाता है। जिससे नासिका मार्ग की सफाई हो जाती है तथा उसमें उपस्थित म्यूकस बाहर निकल जाता है जल के बहने से नासिका एवं नसों में रक्त संचार ठीक से कार्य करना प्रारम्भ कर देता है जिससे मस्तिष्क की धमनियां सक्रिय हो जाती हैं। रबर नेति, सूत्र नेति करने से पूर्व का अभ्यास है जिसमे एक रबर की नलिका को नासिका में डालकर गले के पास से मुख मार्ग से बाहर निकाला जाता है यह नए योगाभ्यासियों तथा उन रोगियों के लिए है जो सूत्र की बनी हुई नेति को नासिका में प्रवेश नहीं करा पाते। सूत्र नेति में एक सूत के बने हुए धागे को नासिका में प्रवेश कराकर नासिका मार्ग में जमें कफ की सफाई की जाती है यह थोड़ी कठिन है किन्तु इसका लाभ अत्यंत आश्चर्यजनक है। नेति क्रिया जत्रुऊर्ध्व रोगों के प्रबंधन हेतु उचित अभ्यास है योग ग्रन्थों में नेति क्रिया के लाभ जो बताए हैं उससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार नेति क्रिया जत्रुऊर्ध्व रोगों का प्रबंधन करके उपरोक्त रोगों को ठीक करने में सक्षम है। हठप्रदीपिका में कहा गया है –

कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायनी।
जत्रुऊर्ध्वजात रोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।।[8]

अर्थात् कपाल का शोधन करने वाली, दिव्य दृष्टि कराने वाली, कंधे से ऊपर के रोगों को ठीक करने वाली नेति क्रिया कंधे से ऊपर के सभी रोगों का उचित उपचार करती है। आँखों के रोग, कान के रोग, नाक के रोग, गले के रोग तथा वाणी की मधुरता में भी नेति क्रिया लाभकारी है। हठरत्नावली में श्रीनिवास जी ने कहा है –

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रुऊर्ध्व जातरोग्घ्ना जायते नेतिरुत्मा।।
नेतिस्वरूपं कथितं श्रिनिवासेन योगिना।।[9]

नेति के स्वरूप का वर्णन श्रीनिवास जी ने इस प्रकार किया है कि यह उत्तम नेति क्रिया कपाल – शोधन, नेत्र ज्योति संवर्धन व कंधों के ऊपर के समस्त रोगों का शमन करती है। स्वामी चरणदास जी कहते हैं कि–

कान नाक अरु दांत को, रोग न ब्यापै कोय।
उज्ज्वल होवें नैनही, नित नेती करि सोय।।[10]

स्वामी चरणदास जी ने कहा है कि नेती के अभ्यास से नाक, कान, दांत आदि के रोग उत्पन्न नहीं होते हैं और नेत्र ज्योति उज्जवल अर्थात् तीव्र एवं स्वस्थ रहती हैं, नेत्र विकार नहीं होते हैं। इस प्रकार जत्रुऊर्ध्व रोगों के प्रबंधन में अहम भूमिका निभाती है नेती क्रिया जत्रु (कन्धे) से ऊपर के अंगों की चिकित्सा करने में सक्षम है।

पंचकर्म – पंचकर्म आयुर्वेदिक चिकित्सा की एक प्रमुख प्रणाली है जो आयुर्वेदिक चिकित्सा में शोधन के लिए प्रयुक्त होती है। यह पाँच विशेष शोधन कर्म होते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य रोगों के उपचार, शारीरिक और मानसिक शुद्धि, स्वास्थ्य में सुधार करना होता है। पंचकर्म के पाँच मुख्य प्रकार हैं – वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण। आयुर्वेद ग्रन्थों में पंचकर्म को शोधन चिकित्सा के रूप में वर्णित किया गया है किन्तु यह शोधन कर्म केवल शरीर की शुद्धि नहीं अपितु विभिन्न रोगों की चिकित्सा करने में सक्षम हैं। वर्तमान में पंचकर्म चिकित्सा को सबसे अधिक लाभकारी और लोकप्रिय चिकित्सा माना जाता है। आचार्य सुश्रुत तीन प्रकार के कर्म बताते हैं यथा –

पंचकर्म–त्रिविधं कर्म – पूर्वकर्म प्रधानकर्म पश्चात्कर्मेति ।।[11]
पूर्व कर्म, प्रधान कर्म, तथा पश्चात कर्म इन तीनों को क्रमशः यथावत करने से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। पंचकर्म के विभिन्न प्रकारों की विस्तार से व्याख्या महर्षि डल्हड़ ने की है –

संशोधस्य पाचन – स्नेहन – स्वेदनानि पूर्वकर्मय
वमन विरेचन वस्ति नस्य सिरामोक्षणनि प्रधानंकर्मय
पेयाद्यन्नसंसर्जनपश्चात् कर्म [12]।

अर्थात् शोधन कर्मों में स्नेहन, पाचन तथा स्वेदन को पूर्व कर्म कहते हैं। वमन, विरेचन व वस्ति, नस्य तथा रक्तमोक्षण (शिरामोक्षण) को प्रधान कर्म कहा जाता है। खाद्य, पेय आदि परहेज और संसर्जन आदि पश्चात् कर्म हैं। इन कर्मों का सही से अनुपालन करने पर रोगी को अत्यंत लाभ मिलता है तथा बीमारी जल्द ठीक हो जाती है। पंचकर्म के प्रकारों पर भी आयुर्वेदाचार्यों में मतभेद है किन्तु हम यहाँ केवल नस्य की बात करेंगे। आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी व्यक्ति की चिकित्सा करना है इसलिए महर्षि चरक ने कहा है –

आयुर्वेदस्य प्रयोजनं स्वस्थस्य स्वास्थ्यरणमातुरस्य विकार प्रशमनं च[13]।

नस्य कर्म – नस्य कर्म एक प्रमुख आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रक्रिया है जिसमें द्रव्याणुषी औषधियों को नासिका मार्ग से आवश्यक स्थान पर पहुँचाया जाता है। इस प्रक्रिया में विशिष्ट औषधियाँ नासिका के माध्यम से प्रवेश करती हैं, जो विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगों का इलाज करने में सक्षम है, जैसे कि माईग्रेन, नासिका संबंधित समस्याएँ सिनुसाइटिस, आध्यात्मिक और मानसिक स्वास्थ्य सुधारना, आदि। नस्य कर्म करते समय चिकित्सक द्वारा रोगी की स्थिति के आधार पर औषधि की विशेष मात्रा और प्रकार का चयन किया जाता है। इसके बाद, यह औषधि नासिका में डाली जाती है और रोगी को उसकी रोग स्थिति के आधार पर सुनिश्चित कराई जाती है। नस्य कर्म का उद्देश्य मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारना है, और यह आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक प्रमुख और प्रभावी चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जाता है।
भावप्रकाश के पूर्व खण्ड में नस्य के विषय में बताया गया है –

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम।
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्।।[14]

नासिका मार्ग द्वारा तेल, द्रव तथा औषधियों को ग्रहण करना नस्य कर्म कहलाता है जिसके नस्य तथा नावन दो नाम बताए गए हैं। जिसके लाभ के रूप में महर्षि वाग्भट्ट ने कहा है कि –

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु विशेषान्नस्यमिष्यते।
नासा हि शिरसो द्वारं तेन तद्व्याप्य हन्ति तान।।

अर्थात् नस्य कर्म जत्रुऊर्ध्व रोगों का नाश करता है चूंकि नासिका को ही सिर का द्वार कहा गया है, इसी द्वार से औषधियाँ सिर में प्रवेश कर जत्रुगत रोगों को ठीक करती है। महर्षि चरक ने लिखा है कि शिरसि इंद्रियाणिप्राणवहनि च स्त्रोतांसि सूर्यमिव गभस्तयः संश्रितानि।[15] अर्थात् सिर मुख्य अंग है जिससे सामान्यतः सभी इंद्रियाँ जुड़ी हैं जैसे चक्षु, श्रोत्र, जीव्हा, घ्राण आदि। इन इंद्रियों में प्राण–प्रवाह भी सिर से ही होता है। इसमे नस्य देने से रोग समाप्त होता है तथा रोगी स्वस्थ हो जाता है। नस्य के नियमित अथवा औषधीय उपयोग से निम्न रोग समाप्त हो जाते हैं।

अपामार्गस्य बीजानि..... तद्यात् शीर्षविरेचन।।
गौरवै शिरः शूले पिनसेअर्धाव भेदके।
क्रिमिव्याधवपस्मारे घ्राणनाशे प्रमोहके।।[16]

अर्थात् नस्य के प्रयोग से जब शिरस्थः विकृत कफ बाहर निकल जाता है तब दुष्ट प्रतिशाय, शिरः शूल, अर्धावभेद, शिरोगौरव, अपस्मार, और मूर्छा जैसे रोगों का उपचार किया जाता है। आयुर्वेद में ये सभी रोग जत्रुऊर्ध्व रोगों की श्रेणी में आते हैं।

तत्र यः स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कंधोरसां च बाल्सच्चननार्थ।
दृष्टिप्रसादजननार्थ व स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिको नस्यशब्दः।।[17]

सिर के दोषों को मिटाने, गर्दन–कन्धे के रोगों को ठीक करने, बल की वृद्धि, आँखों की ज्योति को तेज करने हेतु नस्य कर्म करना चाहिए।

निष्कर्ष – जत्रुऊर्ध्व रोगों के प्रबंधन में योगिक षट्कर्म के अन्तर्गत नेति एवं पंचकर्म के अन्तर्गत नस्य कर्म का प्रावधान बताया गया है जिसके अभ्यास से कंधे से ऊपर के रोग अथवा जत्रुऊर्ध्व रोग ठीक हो जाते हैं। नाक, कान, आँख, मुख, बाल पकना, व बालों का झड़ना, उपरोक्त सभी रोगों में षट्कर्मीय नेति क्रिया एवं नस्य कर्म की उपयोगिता सिद्ध होती है। स्वस्थ समाज की स्थापना के लिये हमें योग एवं आयुर्वेद के पक्षों को अपनाना होगा। अपनी क्षमता के अनुसार साधक अथवा रोगी उपरोक्त चिकित्सा को अपना सकता है।

सन्दर्भ सुची

1. सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द (2011), घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत, पृ० 18.
2. दिगम्बर जी स्वामी एवं झा डॉ. पीताम्बर (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम स्वामी कुवल्यानन्द मार्ग लोनावाला, पुणे महाराष्ट्र पृ० 44
3. सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द (2011), घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार,भारत, पृ० 23.
4. दिगम्बर जी स्वामी एवं झा डॉ. पीताम्बर (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम स्वामी कुवल्यानन्द मार्ग लोनावाला, पुणे महाराष्ट्र पृ० 45
5. Gharote M.L., Devnath P., Jha V. kant (2012). Hatharatnavali (4th ed.) The Lonavala Yoga Institute (India). B-17), Rachna Gardens, Bhangarwadi, Lonavala (India) 410401.P 13.
6. श्रीचरणदास भक्तिसागर, तेजकुमार बुक डिपो (प्रा०) लिमिटेड, लखनऊ, पृ०116.
7. श्रीचरणदासकृत भक्तिसागर तेजकुमार बुक डिपो (प्रा०) लिमिटेड, लखनऊ, दोहा संख्या 185
8. दिगम्बर जी स्वामी एवं झा डॉ. पीताम्बर (2017), हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम स्वामी कुवल्यानन्द मार्ग लोनावाला, पुणे महाराष्ट्र पृ० 49
9. Gharote M.L., Devnath P., Jha V. kant (2012). Hatharatnavali (4th ed.) The Lonavala Yoga Institute (India). B-17), Rachna Gardens, Bhangarwadi, Lonavala (India) 410401.P-42-
10. चरणदासकृत भक्तिसागर तेजकुमार बुक डिपो (प्रा०) लिमिटेड, लखनऊ, भक्तिसागर 186 ॥
11. शास्त्री, कविराज डॉ. अम्बिकादत्त (2019), ''सुश्रुत संहिता–1 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी पृ० 22
12. सुश्रुत संहिता (डल्हड़ टीका) 80 5/1 ॥
13. भाव प्रकाश पूर्व खण्ड
14. आचार्य बालकृष्ण (2017), ''अष्टांग हृदयम्'' दिव्य प्रकाशन, पतंजलि योगपीठ, महर्षि दयानन्द ग्राम, दिल्ली – हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग, उत्तराखण्ड पृ० 370
15. त्रिपाठी, डॉ. ब्रह्मानन्द (2019) '' चरक संहिता–2 '' चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी पृ० 1270
16. त्रिपाठी, डॉ. ब्रह्मानन्द (2019) '' चरक संहिता–1 '' चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी पृ० 50
17. शास्त्री, डॉ. अम्बिकादत्त, कविराज (2019), ''सुश्रुत संहिता–1'' चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी पृ० 225